भारतीय ऐतिहासिक–सांस्कृतिक परम्परा और आदिवासी विमर्श

डॉ. हरित कुमार मीना
सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकटंक, मध्य प्रदेश

S.K. Book Agency
New Delhi

अनुक्रमणिका

पुस्तक परिचय v

प्रस्तावना vii

1. **उत्तराखण्ड का जनजातीय जनांकिकीय अध्ययन** 20
   डॉ. बी.आर. पन्त, घनानन्द पलड़िया

2. **मध्यप्रदेश में गोंड़ जनजाति की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों का एक अध्ययन** 50
   डॉ. ए.न. पंडा, रामबाबू

4. **कुकरामठ मंदिर के मूर्तिशिल्प में जनजातीय कला का प्रभाव** 57
   डॉ. मोहन लाल चढ़ार

5. **आदिवासी जीवन पद्धति एवं वर्तमान चुनौतियॉं** 65
   डॉ. भरत लाल मीना

6. **भारत के आदिवासी एवं उनके वन अधिकार** 72
   डॉ. घनश्याम दुबे, अभिषेक अग्रवाल

7. **बस्तरः आदिम जातियों का सांस्कृतिक जीवन** 82
   डॉ. अनीता शर्मा

8. **मीणा जनजाति का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन** 87
   डॉ. हरित कुमार मीना

9. **छत्तीसगढ़ के पहाड़ी कोरवा जनजाति में कानूनी प्रथाए व राजनीतिक संगठनः एक मानवशास्त्रीय अध्ययन** 99
   इरशाद खान

10. **आदिवासी दर्शन से ही विश्वकल्याण संभव** 111
    अनु सुमन बड़ा

3 मध्यप्रदेश में गोंड़ जनजाति की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों का एक अध्ययन

डॉ. ए.न. पंडा, रामबाबू

"गोंड मध्य भारत का एक विशाल जनजातीय समुदाय है जो अनेक उपजातियो के समूहों से मिलकर बना है। नृजातीय साहित्य मे गोंड़ अपने रंगारंग युवागृहोंके कारण बहुचर्चित रहे हैं। गोंड समुदाय मध्यप्रदेश व छत्तीसगढ़, उड़ीसा, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश झारखण्ड, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल और गुजारत मे निवास करते है परंतु इनका मूल निवास स्थान छत्तीसगढ का बस्तर क्षेत्र माना जाता है। गोंड समुदाय की कुल जनसंख्या पचास लाख से अधिक है जो केवल मध्यप्रदेश व छत्तीसगढ़ मे ही इनकी संख्या तीस लाख से भी अधिक है जो अपनी पचास से अधिक उपजातियो मे बटे हुए प्रदेशो के मध्यवर्ती पठारी भाग– मंडला, सिवनी, छिंदवाडा और बैतूल तथा बस्तर क्षेत्र मे फैले हुए है। आज भी मण्डला जिले की लगभग आधी जनसंख्या गोंड है। इस समुदाय के लोगो की एक विशेषता यह है कि ये लोग अपना परिचय मूल गोंड जाति के रूप मे न देकर अपनी उपजाति के नाम से या "कोतार" कह देते हैं। "कोय", "कोयतोर" या कौतार शब्द का अर्थ है पर्वतीय मनुष्य या गिरिवासी। इनकी परपरागत पडोसी जनजातीय है– बैगा, खोंड, अगरिया, भूमिज और गदबा आदि। अतः इस समुदाय के लोगो की शारीरिक बनावट के आधार पर इनके त्वचा का रंग कथई या कालापन लिए हुए होता है। इनके बाल मोटे, काले तथा घुमावदार, चेहरा गोल, आखें काली, ओठ मोटे तथा नाक फूली हुई होती है।' गोंड एक बहुत ही प्रभावशाली जनजाति है और गोंड प्रकृति प्रेमी होते है क्योकि प्रकृति से इनका बहुत लगाव होता है। "गोंड़ शब्द तेलगू भाषा के गोंडा या गोंड से आया है जिसका अर्थ होता है पर्वत या पर्वत पर रहने वाले गोंड़ कहलाए और गोंड लोग जिस बोली या भाषा का प्रयोग अपने दैनिक जीवन मे करते हैं वह गोंडी कहलाती है। गोंडी शब्द द्रविड परिवार के मध्यवर्ग की भाषा है। बालाघाट, बैतूल, पूर्वी निमाड, होशंगाबाद, छिंदवाडा, सिवनी के गोंड लगभग शुद्ध गोंडी बोलते हैं।"[2] हजारो वर्शो से जनजातीय जगलो और पहाडी इलाको मे रह रही है। खुले मैदानों के निवासियों और सभ्यता के केन्द्रो से उनका सपर्क आकस्मिक से अधिक नहीं रहा।

मैदानी इलाकों से साहूकारो और व्यापारियों के भीषण आक्रमण ने जनजाति समाज को तबाही के गर्त में ढकेल दिया। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है कि मैदानों से आये इन धूर्त, चालाक और पेशेवर लोगो के सपर्क में आने के बीस से तीस वर्षो के भीतर जनजातीय लोग अपनी आर्थिक आत्म निर्भरता और अधिकांश भूमि खो बैठे जिनका हमेशा से जल, जंगल, जमीन पर अधिकार रहा है। इन गरीब और सभी तरह से दुर्बल जनजातियों की व्यथा कथा लगभग सौ वर्षो के समय समय पर प्रतिध्वनि होती रही है। देश की स्वतंत्रता के बाद भी उन्हें सरकार ने और उनके अपेक्षाकृत सभ्य देशवासियों ने एक समस्या की संज्ञा ही दी उससे ज्यादा कुछ नही।[3]

गोंड जनजाति सबसे अधिक प्रभावशाली जनजाति है। गोंड प्रकृति की कोख में किसी पहाडी पर या नदी किनारे रहना पसंद करते हैं। गोंडो क अधिकांश गांव सड़क से दूर जगलो मे बसे होते है। गोंड प्रकृति प्रेमी होते है। गोंडो का सर्वाधिक प्रिय पेय शराब है और गोंडो के जीवन मे शिकार का बहुत महत्व है। गोंडो की जीविका का सबसे बड़ा साध न शिकार है।"[4] भारतीय संविधान की पांचवी अनुसूची में "अनुसूचित जनजातियों" के रूप में प्रावधान किया गया है। अतः अक्सर इन्हें अनुसूचित जातियों के साथ एक ही श्रेणी "अनुसूचित जातियो और जनजातियो" में रखा गया है जो कुछ सकारात्मक कार्रवाई के उपायो के लिए पात्र है। आदिवासियो के अपने जनजातीय संप्रदाय, रीति रिवाज, परंपराएं और संस्कृति हैं जो इस्लाम या वैदिक हिन्दू धर्म से अलग हैं पर तांत्रिक शैव के अधिक करीब हैं। 19वीं सदी के दौरान ईसाई मिशनरियों द्वारा इनकी एक बडी संख्या का परिवर्तन कराकर ईसाई बना दिया गया। माना जाता है कि हिन्दुओं के देव भगवान शिव भी मूल रूप से एक आदिवासी देवता थे लेकिन आर्यों ने उन्हें देवता के रूप में स्वीकार कर लिया। आदिवासियो का जिक्र रामायण मे भी मिलता है। आज़ादी के 68 साल बाद भी भारत के आदिवासी उपेक्षित, शोषित और पीडित नजर आते हैं। राजनीतिक पार्टियां और नेता आदिवासियों के उत्थान की बात करते हैं लेकिन उस पर अमल नहीं करते। देश में अभी भी आदिवासी दोयम दर्जे के नागरिक जैसा जीवन–यापन कर रहे हैं। नक्सलवाद हो या अलगाववाद, पहले शिकार आदिवासी ही होते हैं। उड़ीसा के कंधमाल में धर्मांधाता के शिकार आदिवासी हुए और छत्तीसगढ़, उड़ीसा तथा झारखण्ड में आदिवासी नक्सलवाद तथा माओवाद की त्रासदी झेल रहे हैं। पहली बार यूपीए–सरकार के शासन में आदिवासियों के अपने क्षेत्र और संसाधनों पर अधिकार की बात को कानून तौर पर मान्यता मिली। आदिवासी संरक्षण के लिए नया कानून बना जिसके द्वारा ब्रिटिश जमाने के समस्त नकारात्मक प्रावधानों की विदाई तो हुई लेकिन स्थिति में कोई बड़ा बदलाव नहीं आया।[5]

वर्तमान समय में जनजातियों की सामाजिक चुनौतियों को हम अनदेखी नहीं कर सकते हैं। वैसे तो जनजातियों के समक्ष अनेक प्रकार की सामाजिक चुनौतियां आज विकराल रूप से मुंह बाएं खड़ी हुई है। आज जिस गति से जल, जमीन और जंगलों पर भू–माफियाओं द्वारा उनके खनिज सम्पदा पर जिस प्रकार से बंदिशें बढ़ रही हैं, उससे तो लगता है कि आने वाले दिनों में उनके समक्ष अनेक प्रकार की चुनौतियां सामने खड़ी हो सकती हैं।[6] इस प्रकार मध्यप्रदेश में गोंड जनजातियों की निम्नलिखित सामाजिक चुनौतियां हैं–

- गरीबी– गरीबी तो समसत् मानव के लिए एक अभिशाप की तरह ही होती है। गरीबी उन्मूलन की दिशा मे भी सरकार ने पचवर्शीय योजना शुरू की और इस क्षेत्र मे काफी परिवर्तन भी देखने को मिला लेकिन उतना परिवर्तन नही हो सका जितना कि होना चाहिए था। योजना आयोग ने गरीबी के प्रतिशत का अनुमान 1983–84 मे 37.4 प्रतिशत और 1987–88 मे 29.9 प्रतिशत लगाया। यह प्रतिशत कुल आबादी का है। 1983–84 के काल मे ग्रामीण इलाको मे ही रहते हैं। जनजातीय समुदाय धीरे–धीरे एक ऐसी प्रक्रिया का शिकार होता गया जिसमे एक ओर तो उनके साधनो के आधार और उत्पादन राष्ट्रीय एव अतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से अस्त व्यस्त हुए और दूसरी ओर उनके परपरागत सामुदायिक अधिकारो (जल, जगल, जमीन) और आर्थिक मूलाधारो का अपहरण राज्य सरकारो और व्यापारी हितो द्वारा किया गया। जंगलों से वन उत्पाद संबधित उनके परपरागत अधिकार पूरी तरह से छीन लिए गये। जनजातियों की अच्छी उपजाऊ जमीने उन लोगो के हाथो मे चली गई जो उनके समाज के नही है। जनजाति के लोग दिन प्रतिदिन गरीब होते जा रहे है। यही नही, वे बडी संख्या मे मजदूरी करने लगे हैं और इन मजदूरो को न्यूनतम मजदूरी भी नहीं मिलती।[7] भारत सरकार ने पाचवी पचवर्शीय योजना के दौरान गरीबी दूर करने का नारा दिया। इससे अन्य पिछडा वर्ग और अनुसूचित जाति की स्थिति मे सुधार आया। लेकिन अनुसूचित जनजाति की स्थिति मे कोई सुधार नही आया। वास्तव मे यदि सरकार इनकी गरीबी को हटाने के पक्ष मे है तो इसमे क्रातिकारी तरीके से परिवर्तन करने होगे जिसमे बीच मे दलाल एव बिचौलिए न आ सकें। यह एक आश्चर्यजनक घटना है कि देश के सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 20 प्रतिशत भाग जनजातीय प्रदेश है और जहा अनुमानत: राष्ट्रीय ससाधनो का 70 प्रतिशत खनिज, वन, वन्यप्राणी, जल ससाधन तथा सस्ता मानव ससाधन विद्यमान है और देश के अधिकाश मूलभूत उद्योगो, ऊर्जा ससाधनो, बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाओं तथा यातायात एवं सचार के साधनो मे सर्वाधिक पूजी विनियोजित की गई है। फिर भी यहा रहने वाले भारतीय पुत्रो की पहचान देश के निम्नतम समुदाय के रूप में की जाती है क्योकि अब तक इनके जीवन दर्शन मे उत्पादन, उपभोग, बचत, पूंजी निर्माण तथा विनियोजन की मनोवृत्ति का अभाव है। अत: स्पश्ट है कि राष्ट्रीय आय में आदिवासियो का योगदान लगभग शून्य है तो इसका अर्थ यह है कि इनके लिए विकास का अर्थशास्त्र अप्रासगिक हो चुका है। क्या राष्ट्र निर्माताओं, नीति निर्धारको, योजनाकारो और प्रशासको की रणनीति असफल हो चुकी है? उपरोक्त प्रश्नो पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के पूर्व इनके सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास के स्तर को समझना अधिक समीचीन होगा।[8]
- ऋणग्रस्तता– "भारतीय जनजातियों की समस्याओं मे सभवता ऋणग्रस्तता की समस्या सबसे जटिल है जिसके कारण जनजातीय लोग साहूकारों के शोषण का शिकार होते हैं।"[9] इस ऋणग्रस्तता का कारण निर्धनता, भूखमरी तथा दुर्बल आर्थिक

व्यवस्था है। सीधे सादे इन जनजातियों का पढे लिखे लोगों ने अपने व्यापारिक और राजनीतिक हितो की दृष्टि से इनका भरपूर दुरूपयोग किया क्योंकि इन आदिवासियों में छल कपट आदि की भावना नही थी। ये जनजातियां सरलतापूर्वक धूर्त और बेईमानों के चगुल में फसती गईं। निम्नलिखित कारणों से पहला है– भाग्यवादी प्रवृत्ति व संकुचित विचारधारा के कारण, जाति बिरादरी से निश्काशित किये जाने के भय से तथा पंचायत के द्वारा लगाये गये जुर्मानों के संबध में पंचायत के आदेशों का पालन, विवाह, मृत्यु, मेलों तथा उत्सवों में अपनी क्षमता से अधिक व्यय करने की प्रवृत्ति और उपरोक्त परिस्थितियों के कारण जनजातीय लोगों को सदैव रूपये की आवश्यकता रहती है जिससे ये साहूकारो या ठेकेदारों से उच्च ब्याज दर पर रूपया उधार लेते हैं और उनकी ब्याज दरें इतनी अधिक होती है कि उन्हें चुकाते समय इनकी पूरी जिदगी बीत जाती हैं और मूलधन इन पर बना रहता है। इसका जीता जागता उदाहरण है– मदर इंडिया; जिसमें मार्मिक तरीके से दिखाया गया है कि ऋण कैसे होता है। इस परिदृश्य को देखते हुए भारत सरकार द्वारा उन्हें समाज की मुख्य धारा मे लेने के लिए अनेक प्रकार के कल्याणकारी योजनाएं चलाई जा रही हैं और धीरे–धीरे इन्हें अन्य महत्वपूर्ण योजनाओं की जानकारी दी जा रही है।[10]
- बेरोजगारी– जनजातियों का एक बहुत बडा बहुमत लगभग 85 प्रतिशत कृषि क्षेत्र मे काम करता है।[11] इससे हम कह सकते हैं कि जहां तीन व्यक्तियों की आवश्यकता है वहां पर आठ व्यक्ति लगे और उत्पादन में कोई भी वृद्धि भी न हो तो इसे हम प्रछन्न बेरोजगारी की सज्ञा दे सकते हैं अर्थात् छिपी बेरोजगारी। वर्तमान परिदृश्य मे राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम पर जिसमे केन्द्र और राज्य की सरकारों ने बराबर की पूंजी लगाई है पर 1980 से काम हो रहा है। ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम को 1983 में अमल में लाया जा रहा है। इन दोनों कार्यक्रमों का लक्ष्य ग्रामीण भूमिहीन को न्यूनतम सुनिश्चित स्तर पर रोजगार दिलाना है। इन भूमिहीनों में ज्यादा अनुसूचित जनजाति के लोग है। इन्हें वर्ष के उन महिनों मे रोजगार दिलाना आवश्यक है जब इनके पास कोई काम नहीं होता।[12] इस समय इनकी बेरोजगारी को दूर करने में सरकार अनेक प्रकार के कार्यक्रम संचालित कर रही है। उनमें से एक महत्वपूर्ण योजना है–मनरेगा, जिसके तहत लोगों को 100 दिन काम का अधिकार उपलब्ध कराया जाता है।
- शिक्षा– शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम किसी व्यक्ति को समाज की मुख्य धारा मे ला सकते हैं क्योंकि सीखने की कोई उम्र नहीं होती, व्यक्ति जीवनपर्यन्त कुछ न कुछ सीखता रहता है। 1950 से पहले जनजातीय लोगों को शिक्षित करने के लिए भारत सरकार की कोई भी प्रत्यक्ष योजना नहीं थी। संविधान प्रभावी होने के पश्चात् अनुसूचित जनजाति के लोगों के शिक्षा स्तर में वृद्धि करना केन्द्र तथा राज्य सरकारों का उत्तरदायित्व हो गया है। जनजातीय जनसंख्या में औपचारिक शिक्षा के विस्तार का अनुमान जनगणना के आंकडों से लगाया जाता है।

1961 की जनगणना के अनुसार केवल 3.7 प्रतिशत जनजातीय लोग शिक्षित थे 1991 में यह जनसंख्या बढ़कर 29.60 प्रतिशत हो गई जबकि पूरे देश में लगभग 50 प्रतिशत शिक्षित लोग थे। जनजातीय महिला में शिक्षा की दर बहुत कम है। उत्तर पूर्वी क्षेत्रों की खासी तथा गारो आदि जनजातियों को छोड़कर जिन्होंने ईसाई मिशनरियों से खूब लाभ उठाया।[13] आज भी जनजातियों में यह प्रथा है कि शिक्षा से उनके बच्चे उनसे दूर हो जायेंगे और उनके देवता उन्हें नष्ट कर देंगे। शिक्षा न दिलाने का प्रमुख कारण यह भी है कि वे इतने निर्धन हैं कि अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेज सकते हैं। जनजातीय शिक्षा के विकास में भाषा भी एक बड़ी बाधा है। अधिकतर जनजातीय भाषाएं मौखिक हैं जिनकी कोई लिपि नहीं है। ऐसी स्थितियों के कारण शिक्षा का माध्यम एक बड़ी समस्या हो गया है।[14] जनजातियों के निवास स्थानों के कारण भी शिक्षा का विकास धीमा रहा है। अधिकतर आबादी दूर–दूर है तथा स्कूलों तक पहुंचने के लिए लम्बी दूरी तय करनी पड़ती है।[15]

- मदिरापान– जनजातियों में मदिरापान का अत्यधिक चलन है। अधिकतर जनजातियां मदिरापान के संबंध में बहुत संवेदनशील है तथा महुए के पेड़ को पवित्र मानती है। बाजरे तथा चावल द्वारा अपने घरों में बनायी गई मदिरा जनजातियों में बहुत लोकप्रिय है।[16] लेकिन वर्तमान परिदृश्य में ठेकेदारों और शराब माफियाओं के द्वारा उन पर मदिरा बंद करवाने के लिए गुण्डे और पुलिस की मदद लेते हैं। इस शराब तथा अंग्रेजी शराब पीने की लत एक बार जब इनको लग जाती है तो वे इस चंगुल में फंस जाते हैं और बाहर नहीं निकल पाते और उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव भी पड़ता है।
- आवास– मध्यप्रदेश तथा छत्तीसगढ़ के गोंड साफ सुथरे व कलात्मक आवासों का निर्माण करते हैं। जनजातियों में आवासीय समस्या इतनी गंभीर नहीं है परंतु सभी जनजातियों को यह सुविधा आसानी से उपलब्ध नहीं है तथा मैदान में रहने वाली जनजातियों की आवासीय समस्या गंभीर है। इन लोगों के पास जल, जंगल, जमीन और भूमि व आवास की नितांत कमी है।[17] जनजातियों की आवासीय समस्या को सुलझाने में वन विभाग भी बाधक है। अफसरशाही तथा संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण वनसंपदा के प्रयोग पर जो रोक लगा दी गई है उसके कारण सम्पूर्ण वन–नीति जनजातीय कल्याण कार्यक्रम में एक बड़ी बाधा के रूप में सामने आई है। आवश्यक वस्तुओं का संकलन करने के लिए किसी वन अधिकारी की स्वीकृति पाना इन जनजातियों के लिए बहुत कठिन हो गया है। कड़े नियमों के चलते इन लोगों को मकान बनाने या उसमें सुधार करने के लिए लकड़ी बहुत कठिनाई से प्राप्त होती है जो उन्हें अलगाववादी आंदोलन के लिए प्रेरित कर सकती है।[18]
- स्वास्थ्य– प्रायः जनजातीय लोग सरकारी चिकित्सालयों में कम ही आते हैं। इसका कारण है इनकी अपनी चिकित्सा पद्धतियां। सुदूरवर्ती तथा दुर्गम क्षेत्रों में रहने वाली जनजातियों में यह विश्वास व्याप्त है कि बीमारियां दैवीय शक्तियों, भूत–प्रेतों के

प्रकोप या किसी परंपरा या नियम के उल्लंघन के कारण होती है। सभी उपचारों से निराश होने के बाद ही ये लोग स्वास्थ्य कर्मचारियों से संपर्क करते हैं। तब तक काफी देर हो चुकी होती है।[19] जनजातीय लोगों का सामान्य स्वास्थ्य बहुत बुरा नहीं है परंतु लगातार संक्रमण से उनको अक्सर बीमारियों का सामना करना पड़ता है। वैसे तो जनजातियां बहुत सी बीमारियों से ग्रस्त रहती हैं परंतु सबसे अधिक मात्रा में जल संक्रमण संबंधी रोग पाये जाते हैं जिनसे बहुत लोगों की मृत्यु हो जाती है।[20] वैसे गोंड आदिवासी शब्द सुनते ही हमारे जेहन में घुटने तक धोती पहने हुए हट्टे–कट्टे बलवान और श्याम वर्ण के युवक की तस्वीर उभरती है।[21] लेकिन आज आदिवासी समुदायों में बड़े पैमाने पर महाजनी कुप्रथा प्रवेश पा रही है। आदिवासी इस कुप्रथा के कुचक्र में बुरी तरह फंस कर रह गया है। यह महाजनी कुप्रथा गांव के स्तर से लेकर आज राज्य, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक अपना पांव पसार चुकी है। इसके अलावा वर्ण आधारित व्यवस्था भी जो वर्चस्व पर आधारित है। वे भी धीरे–धीरे आदिवासी समुदाय में अपनी जड़ें जमा चुकी है। इसके पालने का काम वहीं ताकतें कर रही हैं जो भारत को बाहुल्यवादी देश से एक हिन्दू राष्ट्र में बदलने के लिए प्रयासरत है। आज आदिवासी समुदाय पर विकास बनाम विस्थापन की अमानवीय विभत्स तस्वीर उभरी है जो आदिवासियों की भूमि पर आज बड़े–बड़े उद्योग स्थापित किये जा रहे हैं और इस संपत्ति में उनकी हिस्सेदारी तो खत्म की ही जा रही है साथ ही उन्हें अपना मूल निवास स्थान, जल, जंगल, जमीन छोड़ने के लिए मजबूर किया जा रहा है। विकास के इस अमानवीय मॉडल में उनके प्राकृतिक संसाधनों के साथ ही उनके बुनियादी अधिकारों को भी छिन लिया है और यह अमानवीय कार्य आज भी बदस्तर जारी है। आदिवासी समाज में कुछ आंतरिक समस्याएं भी हैं जिसको जांचा परखा जाता रहा है। आदिवासी समाज की कुप्रथाएं मसलन अंधविश्वास और शराबखोरी भी बड़े स्तर पर आदिवासी समुदाय में व्याप्त है जिनसे उनके पिछड़ेपन का बोध होता है हालांकि पूर्ववर्ती सरकारों ने इस समुदाय के लिए बहुत कुछ किया है लेकिन इनकी जरूरतों को देखते हुए यह प्रयास पर्याप्त नहीं है। इसलिए जरूरत है कि इनके विकास के लिए जिम्मेदारी और इमानदारी से काम किया जाए। आदिवासियों की आदिम संपत्ति जल, जंगल और जमीन को सत्ता के ठेकेदार कार्पोरेट हाथों में सौंप रहे हैं और आदिवासियों को लगातार विस्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं। आशा का स्त्रोत बस वह संघर्ष है जो आदिवासी अपने बलिदान की चिता पर लड़ रहे हैं और अन्याय व शोषण के इस पहाड़ का हटना असंभव भी नहीं है, आप हटा सकते हैं, लगातार कोशिश से। खोदते–खोदते एक पीढ़ी बर्बाद हो सकती है दूसरी भी हो सकती है लेकिन पहाड़ हट कर रहेगा, अगर खोदना जारी रहा।[22]

अंततः हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते है कि आज के वर्तमान परिदृश्य में जनजातियों की सामाजिक चुनौतियां जो भी है वह धीरे–धीरे अनुकूल हो रही है और केन्द्र सरकार एवं

राज्य सरकारों के संयुक्त प्रयास से उनके जीवन स्तर को सुधारने के लिए अनेक लोककल्याणकारी योजनाएं संचालित की जा रही हैं और शिक्षा के द्वारा उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाने के निरंतर प्रयास किये जा रहे हैं। अब धीरे–धीरे इसके सकारात्मक परिणाम दिखाई दे रहे हैं। वे अब समाज की मुख्य धारा में आ रहे हैं। इनमे से कुछ लोग छिंदवाड़ा जनपद के आसपास कोयले की खानों में मजदूरी करने लगे हैं लेकिन फिर भी उनकी बहुत सी समस्याएं हैं जिनका समाधाना करना होगा जो उनके अधिकार जल, जगल जमीन है उन पर उनका हक दिलाना होगा और उनकी जा कुशलताएं हैं उनको तराशना और सहेजना होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 हसनैन, नदीम. ''जनजातीय भारत'' जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, आठवा संस्करण 2013 पृष्ठ क्र. 148

2 नायडू, पी. आर. ''भारत के आदिवासी विकास की समस्याएं'', राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली–110002 आई.एस.बी.एन. 81–7487–104–7, प्रथम संस्करण 1997, पृष्ठ क्र. 28

3 हसनैन, नदीम. ''जनजातीय भारत'' जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, आठवा संस्करण 2013 पृष्ठ क्र. 141

4 नायडू, पी. आर. ''भारत के आदिवासी विकास की समस्याएं'', राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली–110002 आई.एस.बी.एन. 81–7487–104–7, प्रथम संस्करण 1997, पृष्ठ क्र. 15

5 हसनैन, नदीम. ''जनजातीय भारत'' जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, आठवा संस्करण 2013 पृष्ठ क्र. 14

6 हसनैन, नदीम. ''जनजातीय भारत'' जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, आठवा संस्करण 2013 पृष्ठ क्र. 163

7. हसनैन, नदीम. पृष्ठ क्र. 148

8. हसनैन, नदीम. पृष्ठ क्र. 149

9. हसनैन, नदीम. पृष्ठ क्र. 167

10. हसनैन, नदीम. पृष्ठ क्र. 167

11.हसनैन, नदीम. पृष्ठ क्र. 178

12. हसनैन, नदीम. पृष्ठ क्र. 181

13. हसनैन, नदीम. पृष्ठ क्र. 181

14. हसनैन, नदीम. पृष्ठ क्र. 172

15. हसनैन, नदीम. पृष्ठ क्र. 176

16. हसनैन, नदीम. पृष्ठ क्र. 177

17. हसनैन, नदीम. पृष्ठ क्र. 169

18. हसनैन, नदीम. पृष्ठ क्र. 168

19. भारत के मूल निवासी आदिवासी की वर्तमान स्थिति एवं चुनौतियां व संघर्ष